IJAER/July- August- 2021/Volume-10/Issue-1 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

"यज्ञ : प्रजापति की प्रतिमा" (प्रजापतिर्यज्ञः) (ब्राह्मण–ग्रन्थों के संदर्भ में)

अर्चना भार्गव

Associate professor

Department of Sanskrit

Samrat prithviraj Chauhan Government College, Ajmer, Rajasthan

ऋग्वेद के पुरुष–सूक्त में ऋषि नारायण कहते हैं कि "यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रधमान्यासन्"।[1] अर्थात् यह सृष्टि–यज्ञ प्रारम्भिक सूक्ष्म तत्वों के संगतिकरण से सम्पन्न किया गया था और वे ही इस विश्व के आदि धर्म हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार यज्ञ का द्विविध स्वरूप है – प्राकृत तथा कृत्रिम। सृष्टि में इन दोनों यज्ञों की सत्ता है। प्राकृत याग प्रकृति में निरन्तर चल रहा है। वैदिक विचारधारा के अनुसार प्राकृत याग अर्थात् सृष्टि यज्ञ का अनुकरण कर कृत्रिम याग अर्थात कर्मकाण्डीय यज्ञ विहित हुआ है। "देवान् अनुविधा वै मनुष्याः यद् देवा अकुर्वन् तदहं करवाणि"। **कर्मकाण्डीय–यज्ञ सृष्टि–यज्ञ की प्रतिमा है। सृष्टि–यज्ञ ही प्रजापति है। अतः शतपथ में कहा गया है कि यज्ञ प्रजापति की प्रतिमा है** –

"स देवेभ्य आत्मानं प्रदाय। अथैतमात्मनः प्रतिमामसृजत यद्यज्ञं तस्मादाहुः प्रजापतिर्यज्ञ इत्यात्मनो ह्येतं प्रतिमामसृजत"।[2]

अन्य शास्त्रों में भी यज्ञ तथ प्रजापति का तादत्म्य मिलता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण[3] तथा कौषीतकि ब्राह्मण[4] में कहा गया है कि "यज्ञ उ वै प्रजापतिः"। ऐतरेय ब्राह्मण[5], तैत्तिरीय ब्राह्मण[6] तथा गोपथ ब्राह्मण[7] में उल्लिखित है कि "प्रजापतिर्यज्ञः"। इस पकार यज्ञ प्रजापति भी है तथा यज्ञ पर एकमात्र प्रजापत का अधिकार होने के कारण तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है – "प्राजपत्यो यज्ञः"।[8] अतः ब्राह्मण प्रमाण प्रजापति को यज्ञ का प्रतिरूप स्वीकार करता है। यह विषय गवेषणीय है कि इन दोनों की समरूपता का आधार क्या है? प्रजापति अर्थात् सृष्टि याग का परिमाण विशाल हे तथा इसके मॉडल के रूप में कर्मकाण्डीय याग उसकी लघुतम इकाई है। इन दोनों यागों में सामंजस्य दिखाना ही शतपथ ब्राह्मण का मुख्य विषय है। स्थूल द्वारा सृक्ष्म के अनुकरण की प्रक्रिया में संगतिकरण का अभिप्राय समझनें के लिए "यज्ञ" पद का विवेचन अपेक्षित है।

यज्ञ का सैद्धान्तिक विवेचन :

"यज्ञ" पद √यज्ञ देवपूजा – संगतिकरण–दानेषु धातु से "नङ्" प्रत्यय लगकर निष्पन्न हुआ हैं अर्थात् दिव्य तत्वों की अर्चना, आदान–प्रदान की प्रक्रिया तथा तात्विक संगतिकरण यज्ञ कहलाता है। निरूक्त में महर्षि यास्क "यज्ञः कस्मात्" प्रश्न करते हुए यज्ञ की परिभाषा देते हैं –

"प्रख्यातं यजतिकर्मेति नैरूक्ताः याच्ञों भवतीति वा। यजुस्न्नो भवतीति वा। बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवः यजूंष्येनं नयन्तीति वा"।[9]

अर्थात् यजनार्थक होने के कारण, फल विशेष की कामना के लिए किये जाने के कारण, यजुर्मन्त्रों से क्लिन्न होने के कारण, बहुकृष्णाजिन् सम्पन्न होने के कारण तथा यजुर्मन्त्रों द्वारा सफल होने के कारण यज्ञ कहा जाता है। यह प्रस्तुत परिभाषा कृत्रिम यज्ञ की अत्यन्त सार्थक परिभाषा है।

महर्षि कात्यायन ने यज्ञ की परिभाषा देते हुए लिखा है कि "द्रव्यं देवता त्यागः" अर्थात् पृथिवी में वेदी का उत्खनन कर उसमें प्रज्ज्वलित अग्नि में, विभिन्न देवों का बाह्वान करते हुए उन्हें हविष्य या सोमरस की आहुति देना ही यज्ञ है। यहाँ द्रव्य विषय है, देवता विषयी है तथा त्याग कर्म है। इस त्रिक से ही यज्ञ सम्पूर्ण होता है। इन तीन तत्वों से ही यह सृष्टि परिचालित है। अग्नि में हवन किया गया पदार्थ अपूर्व के रूप में परिवर्तित होकर वृष्टि आदि का प्रेरक होता है। इसी अभिप्राय को यज्ञ की इस निर्वचनात्मक परिभाषा में स्पष्ट किया गया है –

"अध यस्माद्यज्ञो नाम। ध्नन्ति वाडएनम् पतद्यदभिषुण्वन्ति तद्यदेनं तन्वते तदेनं जनथन्ति स तायमानो जायते स यन्जायते तस्माद्यज्ञो यज्ञो ह वै नामैतद्यद्यज्ञ इति"।[10]

अर्थात् जब इसे कुचलते हैं तो इसे मारते है। जब इसे फैलाते हैं तो उत्पन्न करते हैं। यह विस्तारित किया जाता हुआ उत्पन्न होता है। अतः "यन् जायते" से यज्ञ नामकरण हुआ। **प्रस्तुत व्याख्या के आधार पर शतपथ में वाक्, पुरुष, प्राण, प्रजापति, विष्णु आदि को यज्ञ से समीकृत किया गया है।**

प्रजापतिः यज्ञः –

शतपथ ब्राह्मण में उपलब्ध यज्ञ की उपर्युक्त परिभाषा का अभिप्राय यही है कि पदार्थ का मूल रूप परिवर्तित होकर अन्य रूप हो जाना ही मर्दन के बाद मारना तथा वस्तिार करने पर उत्पन्न करना है। प्रजापति अपने स्वरूप को त्यागकर सृष्टि के रूप में परिवर्तित हो गया, यही यज्ञ है। अतः शतपथ में प्रजापति को "प्रत्यक्ष यज्ञ" कहा गया है – "एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः"।[11]

शतपथ ब्राह्मण में अनेक स्थलों पर प्रजापति तथा यज्ञ को समीकृत किया गया है–

"प्रजापतिर्यज्ञः"[12]

"एष यज्ञ वै प्रजापतिः"[13]

"इमं यज्ञं प्रजापतिं जय"[14]

"एष वै यज्ञ एव प्रजापतिः"[15]

"संवत्सरो यज्ञः प्रजापति"[16]

उपर्युक्त कथनों का अभिप्राय यही है कि यज्ञ प्रजापति का ही प्रतिरूप है। कुछ विद्वानों ने प्रजापति को यज्ञ का पर्याय माना है किन्तु डॉ. उर्मिला देवी शर्मा के अनुसार प्रजापति को यज्ञ का पर्याय मानना एक भ्रांत कथन है। किसी गुण–विशेष अथवा पक्ष–विशेष की दृष्टि से इतर शब्द पर आरोप "गुण आधारित अंशिक समीकरण" तो कहला सकता है किन्तु पर्याय नहीं। यज्ञ से प्रजापति का समीकरण गुण आधारित अंशिक समीकरण ही है। स्रष्टा के रूप में प्रजापति में सर्वप्रथम काम (इच्छा) का विस्तार होता है, पुनः वह उत्पन्न होता है। अतः केवल विस्तारित होकर उत्पन्न होने के गुण के कारण प्रजापति यज्ञ है।[17]

वस्तुतः प्रजापति पद के यौगिक अर्थ को त्यागकर केवल रूढ़ अभिप्राय को लिया जाये तो वह यज्ञ का पर्याय कहा जा सकता है। यज्ञ का कार्य भी पदार्थ का स्वरूप परिवर्तित करना है और प्रजापति का कार्य भी स्व–स्वरूप को रूपान्तरित करना है। चूँकि क्रियात्मकता ही यज्ञ है। अतः शतपथ में कर्म द्वारा तत्वों का नामकण किया गया है। **इस दृष्टि से प्रजापति यज्ञ का प्रतिरूप किंवा पर्याय कहा जा सकता है।**

ऋग्वेद में कहा गया है कि प्रजापति ने आद तत्व सत् को मनस् तत्व के माध्यम से प्रस्तुत सृष्टि–चक्र के रूप में गतिमान किया। भौतिक याग में भी अग्नि पदार्थों के परमाणुओं को फैलाकर उत्पत्ति–प्रक्रिया में सहायक बनाता है। आधुनिक विज्ञान भी उक्त कथन का समर्थन करता है कि पदार्थ "ऊष्मा" द्वारा विस्तरित होते हैं। इस प्रकार प्रजापति एक ऊष्ण प्राण तत्व है जो सृष्टि प्रक्रिया का प्रर्वतक है। **शतपथ में प्रजापति अैर यज्ञ का सादृश्य निरूपति करते हुए कहा गया है कि यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ देवता तथा आदिस्रष्टा प्रजापति है।**[18]

ओझा विज्ञान के अनुसार यज्ञ :

पं. मोतीलाल जी शास्त्री के अनुसार संवत्सराग्नि को आत्मसात् करने का नाम यज्ञ है। अर्थात् प्राकृतिक संवत्सराग्नि में पारमेष्ठ्य सोम की आहुति ही यज्ञ है, किन्तु यह सृष्टि–यज्ञ कहलाता है। इसी यज्ञ की प्रतिमा है कर्मकाण्डीय यज्ञ। सृष्टि–यज्ञ ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्याप्त है अर्थात् ब्रह्माण्ड के कण–कण में व्याप्त है इसीलिए यज्ञ को विष्णु कहा गया है – "विष्णुर्वै यज्ञः"। विष्णु पद √विष्लृ व्याप्तौ या √विष्लृ गतौ धातु से बना है। कारणावस्था से कार्यावस्था में सृष्टि की पणिति के मूल में क्रिया है। उस क्रिया की व्यष्टि को कर्म कहते हैं इसीलिए यज्ञ कर्म का वाचक हे। शतपथ में कहा भी गया है कि "यज्ञो वै श्रष्ठतमं कर्म"।[19] इस सृष्टि–क्रिया के पीछे एक पूरा विधान है और विधिपूर्वक किया गया प्रत्येक श्रेष्ठ कर्म, जिसे पूर्णता तक ले जाया जाता है, कर्म है। गीता में कृष्ण कहते हैं –

"सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः"

अर्थात् प्रजापति ने मनुष्य को तथा अपने प्रतिरूप यज्ञ अर्थात् कर्म को युगपत् रचा। यदि यज्ञ की सृष्टि के बिना केवल मानव उत्पन्न होता तो बुद्धि तथा हाथों की निष्क्रियता उसके जीवन के अस्तित्व को खतरे में डाल देती। शतपथ के अनुसार दो वस्तुओं की संख्याओं का पारस्परिक मिलन ही सम्पत् है। यही यज्ञ है। दो वस्तुआकं का ग्रन्थि–बन्धन ही यज्ञ है। यज्ञ पद में निहित "यज्" धातु का अर्थ संगतिकरण है। सौर–यज्ञ–प्रजापति के वस्तु तत्व अग्नि–सोम हैं इसीलिए जगत् अग्निपोमात्मक है। शतपथ के अनुसार सृष्टि प्रजापति तथा श्री के मिथुनत्व का परिणाम है। यही विज्ञानात्मक विज्ञान–यज्ञ है जो परीक्षणात्मक अर्थात् आचरणात्मक है। "ज्ञानं भारः क्रिया विना"। क्रिया के बिना ईक्षण अधूरा है। ब्रह्म भी यज्ञ के द्वारा ही विभूति भाव को प्राप्त करता है। मानव शरीर भी यज्ञ से संचालित है। वैश्वानर अग्नि में अन्न की आहुति से शरीर चलता है। भुक्तान्न की सात चितियाँ असृक् मांस मेद आदि प्रार्थिव चितियाँ हैं। कम्रकाण्डीय यज्ञ की पक्षी रूप वेदी प्रजापति है। यह पृथिव है जो प्रजापति की गार्हपत्य वेदी है जहाँ यज्ञ का फल मिलता है, सभी कामनाएं पूर्ण होती हैं।

कर्मकाण्डीय यज्ञ विभिन्न सूक्ष्म यज्ञों का प्रतीक मात्र है। स्थूल द्वारा सूक्ष्म तक सुगमता से पहुँचा जा सकता है। अतः भौतिक यज्ञ की पूर्ण प्रक्रिया का अवगाहन कर उन प्रक्रियाओं के प्रतीकार्थ जान लेने पर वैदिक ऋषियों द्वारा चिंतित प्राकृत विज्ञान को समझना सरल हो जाता हैं तथा यज्ञ–सम्बन्धी विभिन्न सादृश्य–विधान स्पष्ट हुए से प्रतीत होने लगते हैं। "यज्ञ पुरुष है हविर्द्धानं इसका सिर, आहवनीय मुख, अग्नीध्रीय तथा मार्जालीय दोनों बाहु....." इत्यादि द्वारा यज्ञ का मानवीकरण प्रस्तुत किया गया है।[20]

सृष्टि–यज्ञ का सादृश्य–विधान भी दर्शनीय है। "संवत्सर ही यजमान हे, ऋतुयें यज्ञ करवाती हैं, वसन्त अग्नीध्र है। अतः वसन्त में दावाग्नि फैलती है। वह अग्नि रूप है। ग्रीष्म ही अध्वर्यु है क्योंकि वह तप्त सा होता है। अध्वर्यु भी तप्त की तरह निष्क्रमण करता है। वर्षा उद्गाता है क्योंकि जोर से स्वर करता हुआ रसता है। साम के समान उपशब्द होता है। शरद् ही ब्रह्मा है क्योंकि शस्य उसी से पकता है। हेमन्त "होता" है"।[21]

कर्मकाण्डीय यज्ञ किसी महान् ब्रह्माण्डीय क्रिया का प्रतीकात्मकम रूप है। कर्मकाण्ड ब्रह्मज्ञान की सूक्ष्म से सूक्ष्म विचारधार का परम वैज्ञानिक अभिनय प्रस्तुत करता है। पंचमहायज्ञों में प्रमुख है ब्रह्मयज्ञ। स्वाध्याय का नाम ब्रह्म – यज्ञ है। वाणी इसकी जुहू है, मन उपभृत् है, चक्षु ध्रुवा हे, मेघा स्रुवा है, सत्य अवभृथ है, उसकी हथेली में ही स्वर्ग है।

कर्मकाण्डीय यज्ञ–प्रक्रियाओं के प्रतीकार्थ :

सृष्टि–रचना–प्रक्रिया को सृष्टि विद्या कहते हैं। सृष्टि–रचना–प्रक्रियायें तो अनन्त हैं। कर्मकाण्डीय वैदिक यज्ञ इनमें से प्रमुख प्रक्रियाओं को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करता है इसीलिए कहा गया है – "प्रजापतिर्वै यज्ञः"। इसे सम्यक् रूपेण समझने के लिए यज्ञ सम्बन्धी विधियों और क्रियाओं की प्रतीकात्मकता को निम्न रूप में प्रदर्शित किया जा रहा हैः–

(क) वेदी निर्माण :

शतपथ ब्राह्मण के तृतीय काण्ड के पाँचवें अध्याय में वेदी निर्माण के प्रसंग में प्रजापति तथा यज्ञ का समीकरण ध्यातव्य है। शतपथ में कहा गया है "सैषा त्रयी विद्या तपति"। यह त्रयी विद्या यज्ञ है। शतपथ में ऋक् साम यजुः का स्वरूप निम्न रूपेण वर्णित है –

"यदेतन्मण्डलं तपति। तन्ममहदुक्थम्। ता ऋचः। स ऋचां लोकः अथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतम्। तानि सामानि स साम्नां लोकः। अथ य एतस्मिन् मण्डले पुरुषः सोऽग्निः। तानि यजूंषि। स यजुषां लोकः। सैषा त्रयेव विद्या तपतीति"।[22]

सूर्य बिम्ब ऋग्–रूप है। इसका प्रकाश मण्डल सामग्र है। वायु ही यजुः है। सूर्य के केन्द्र में प्रजापति पुरुष है जो मनवाक्प्राणमय है। इस आश्नेय प्रजापति से तीनों लोकों का निर्माण होता है। अग्निषोमात्मकं जगत् के अनुसार अग्नि में सोम की आहुति पड़ना ही यज्ञ है।

ऋक् मूर्ति है। महिमा मण्डल साम है। इस ऋक् साम के मध्य यजुः है। इस प्रकार वेद ही यज्ञ है। वेद को प्रतिष्ठित करना यज्ञ है। अतः यज्ञ हेतु वेदी निर्माण किया जाता है। यज्ञ का आविष्कार प्राकृतिक यज्ञ के अनुकरण पर हुआ है। प्रकृति–यज्ञ की साक्षात् अनुकृति ही मानुष–यज्ञ है। वेदी, ऋत्विज, याज्ञिक संभार आदि सूक्ष्म रूप में अधिदैविक मण्डल में भी है इसीलिए शतपथ में कहा गया है कि –

"व्यद्र्धं वै तद् यज्ञस्य यन्मानुषम्"[23]

प्रकृति में यज्ञ कैसे हो रहा है? इस तथ्य को जाने बिना मानुष यज्ञ का रहस्य समझ में नहीं आ सकता है।

(ख) आदान विसर्ग :

संसार में जो भी पदार्थ दिखाई दे रहे हैं वे यज्ञिय पदार्थ हैं। पदार्थों में भी यज्ञ हो रहा है क्योंकि यज्ञ का स्थूल अर्थ है आदान–प्रदान। यज्ञ को हवन कहते हैं। "हवन" में √हु दानादानयोः धातु है अर्थात् देना और लेना। सृष्टि के रंगमंच पर जो देन–लेन चल रहा है वह अधिदैविक तथा आध्यात्मिक यज्ञ है। कर्मकाण्ड में यही आदान–प्रदान आहुतियों तथा फल आदि के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। यज्ञ आदान–विसर्गात्मक है। अतः कात्यायन ने यज्ञ की परिभाषा "द्रव्यं देवता त्यागः" दी है। इस सम्पूर्ण सृष्टि में द्रव्य, देवता और त्याग ये तीन तत्व ही मूल आधार हैं। जिनसे सृष्टि परिचालित है। द्रव्य अर्थात् पदार्थ

सृष्टि के प्रथम आधार हैं। तत्पश्चात् अग्नि, सूर्य, वायु आदि दिव्य तत्वों का स्थान आता है। यदि सूर्य, चन्द्र आदि न हों तो सृष्टि किंचित् भी गति नहीं कर सकती। तीसरा तत्व है त्याग अर्थात आहुति (दान)। देने में ही लेने का अर्थ निहित है। एक व्यक्ति देता है तो दूसरा लेता है। यह सृष्टि का आधारभूत व्यवहार है। जैसे पृथिवी यज्ञ अर्थात् प्रतिष्ठा यज्ञ को ही लीजिए। पृथिवी रूपी पिण्ड सूर्य के परिक्रमा लगाता है। फलस्वरूप वर्ष, मास, पक्ष, दिन आदि हमें प्राप्त होते हैं। पृथिवी का विसर्ग हमारे लिए आदान है। यह आहुति प्रजापति की है। वही यजमान है।

(ग) तीन अग्नियाँ :

धरती के पृष्ठ पर तपने वाला नैसर्गिक प्राण "गार्हपत्य" अग्नि है। दिव्याग्नि प्राण "आहवनीय" अग्नि है। पार्थिव वैश्वानर अग्नि ही "दक्षिणाग्नि" है। दषिणाग्नि पार्थिव दृष्टि से महान् है क्योंकि यज्ञिय पुरोडाश का अर्थात् पार्थिव द्रव्यों का परिपाक इसी अग्नि से होता है।

(घ) पृथिवी वेदी :

धरती की पीठ ही वेदी है। जैसे पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है वैसे ही चन्द्रमा इस पृथिवी की परिक्रमा करता है। चन्द्रमा सोम है एक भास्वर पिण्ड है। यह चान्द्र सोम आहवनीय तथा गार्हपत्य अग्नि अर्थात् नैसर्गिक प्राण तथा दिव्य प्राण रूप अग्नियों में सतत् आहुत होता रहता है। आग्नेय प्राण देवता है।

(ङ) दर्शपूर्णमास :

प्रकृति यज्ञ में दैनिक (दिन) भूपृष्ठ प्राण आहवनीय है, नैशिक (रात्रि) भूपृष्ठ प्राण गार्हपत्य है तथा वैश्वानर दक्षिणाग्नि है। पृथिवी वेदी है चान्द्र सोम हवि है दर्श तथा पूर्ण दो प्रमुख काल इकाइयाँ हैं जिनसे पखवाड़े बनते हैं। ठीक इसकी प्रतिकृति ही मानुष "दर्शपूर्णमास यज्ञ" है। आहवनीय दिव्य प्राण धरती के पूर्व–पृष्ठ पर विद्यमान है। अतः कर्मकाण्ड में आहवनीय अग्नि को पूर्व भाग में स्थापित किया जाता है। गार्हपत्य को पश्चिम में तथा दक्षिणाग्नि को दक्षिण दिशा की ओर उसी अधिदैविक क्रम के अनुसार स्थापित किया जाता है। नैसर्गिक वेदी पृथिवी के अनुसार ही आहवनीय तथा गार्हपत्य के बीच पृथिवी स्थानीय कर्मकाण्डीय वेदी बनाई जाती है। पृथिवी पर जैसे नैसर्गिक दर्शपूर्णमास चल रहा है वैसे ही कर्मकाण्डीय अनुष्ठान में भी अमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन यज्ञ चलता है।

उत्पन्न सृष्टि में काल का द्योतन सर्वप्रथम क्रिया है। अन्धकार मूलभूत तत्व है। सूर्य ने उदित होकर संसार में द्वैत भाव उत्पन्न किया। अन्धकार से प्रकाश आ जुड़ा। अतः शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष दो प्रकृति तत्व हैं। कृष्ण पक्ष "दर्श" है तथा शुक्ल पक्ष "पौर्णमास"। इन दोनों का नर्तन ही मौलिक यज्ञ है। कर्मकाण्डीय यज्ञ सृष्टि–या का रूपकात्मक विवरण है। दर्शपूर्णमास यज्ञ सारे श्रौत यज्ञों की प्रकृति है तथा

प्रजापति सारे विश्व की प्रकृति है। अतः दर्शपूर्णमास यज्ञ में सम्पन्न क्रियायें सृष्टि विद्या के रहस्य का द्योतन करने वाली हैं। कतिपय उदाहरणों से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है।

शतपथ के अनुसार अमावस्या तथा पूर्णिमा के दो अर्धमास प्रजापति पुत्र असुरों तथा देवों के दायभाग थे। चन्द्रमा को पूर्ण करने वाला पक्ष देवों को तथा क्षीण करने वाला पक्ष असुरों को मिला था। देवों ने पर्वद्वय पर इन यागों का अनुष्ठान करके असुरों के भाग को भी प्राप्त कर लिया –

"देवाश्च वा असुराश्च। उभये प्राजापत्याः। प्रजापतेः पितुद्रायमुपेयुरेतावेवार्धमासौ य एवापूर्यते तं देवा उपायन्यो अपक्षीयते तमसुराः।"[24]

दर्शापूर्णमास यज्ञ अग्निहोत्र तथा चातुर्मास्यों की भाँति पर्व है क्योंकि अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास तथा चातुर्मास्य प्रजापति रूपी संवत्सर के अंग के पर्व (जोड़) हैं। प्रजा उत्पन्न करने के बाद प्रजापति जब शिथिलांग हो गया तो उसके पर्व–पर्व दुखने लगे। सृष्टि–यज्ञ में सृष्टि के सर्जक अग्नि आदि तत्वों का शान्त होना ही यज्ञ में प्रजापति का शिथिल होना है। अग्निहोत्र द्वारा यजमान उस प्रजापति की प्रातः सायंरूपी संधियों का तथा चातुर्मास्य द्वारा ऋतुरूपी सन्धियों का उपचार करता है। इसी प्रकार दर्शपूर्णमास यज्ञ द्वारा उसकी पाक्षिक सिन्धयों का उपचार करता है।[25]

दर्शपूर्णमास याग के अन्तर्गत यदि किसी विशेष उद्देश्य से इष्टि करनी हो तो सत्रह सामिधनियाँ पढ़ी जाती है। वर्ष में बारह मास और पाँच ऋतु होती हैं। इस प्रकार संवत्सर प्रजापति के 17 अवयव हो गये। सत्रह अवयव स्वयं में एक पूरी इकाई है। अतः यज्ञकर्ता यजमान को सम्पूर्णतः प्राप्त हो जाती है।[26]

प्रजापति ही प्रथम यज्ञकर्ता यजमान है। उसने "स्वाहा" शब्द के उच्चारणपूर्वक आहुति दी थी। इसी का अनुकरण कर भौतिक याग में स्वाहाकर द्वारा आहुति दी जाती है।[27]

प्रजा – सर्जन के पश्चात् यज्ञ प्रजापति ने उत्पन्न भूतों को पुनः स्वयं में समाविष्ट करना चाहा। उसने अपने शरीर के 24 भाग किये। प्रत्येक भाग में 30–30 ईटें आयीं। 15–15 के दो व्यूह हो गये। ये इष्टकायें दिन–रात की प्रतीक हैं। पन्द्रह दिन चाँद के बढ़ने के हैं और पन्द्रह दिन घटने के। अर्थात् 15–15 के दो व्यूह शुक्ल पक्ष ओर कृष्ण पक्ष के तथा 24 भाग संवत्सर के 24 अर्धमासों के प्रतीक हैं।[28]

पक्षिरूप चित्याग्नि की प्रतीकात्मकता :

शतपथ में चित्याग्नि के संदर्भ में एक उपाख्यान द्वारा वेदी के पक्षिरूपत्व का कारण स्पष्ट किया है।[29] एक बार प्रजापति में स्वर्ग लोक पर पहुँचने की कामना हुई। सारे पशु प्रजापति रूप हैं – "सर्वे वै पशवः प्रजापतिः"। पुरुष, अश्व, गो, भेड़, बकरी ये सभी रूप प्राजापत्य हैं किन्तु इनमें से कोई भी रूप उसे स्वर्ग नहीं ले जा सका। उसने पक्षी रूपी अग्नि में स्वयं अपने स्वरूप को देखा। उसने उसे विशिष्ट रूप में धारण किया। पंखों को (अर्धमास रूपी पक्षों को) फैलाये या सिकोड़े बिना वह नहीं उड़ सका। पंखों को

फैलाकर और सिकोड़कर ही वह उड़ा इसीलिए आज पक्षी अपने परों को फैलाने और सिकोड़ने पर ही उड़ते हैं। यहाँ यज्ञ में जो क्रियायें भी द्वन्द्वात्मक क्रिया द्वारा की जाती हैं वे प्रजापति के पंखों की प्रतीक हैं। काल रूपी पक्षी (संवत्सर) दो उजले – मैले पंखों से अनवरत उड़ा जा रहा है। उसके उड़ने का साधन है दो पंख अर्थात् शुक्ल और कृष्ण दो पक्ष। इनकी कलाओं का घटना और बढ़ना तिथियों की संरचना तो करता ही है, साथ ही यह भी बताता है कि काल का यह संकोचन और प्रसारण यदि न हो तो काल की गति पंगु हो जाती है।

सम्पूर्ण वेदी–निर्माण ज्यामितीय नाप के माध्यम से होता है और वह प्रतीकात्मक है। इस नाप में 24 अंगुल का माप सृष्टि–विद्या में गायत्री का प्रतीक है। चार अंगूल भीतर से सिकोड़ना तथा चार अंगुल बाहर से फैला देना, पंखों में निर्णाम (झुकाव), उस निर्णाम में एक ईंट रखना आदि सभी क्रियायें सृष्टि–विद्या के किन्हीं वैज्ञानिक नियमों की प्रतीक हैं।

शतपथ में प्रजापति को सत्प पुरुष कहा गया है[30] क्योंकि सात पुरुष–तत्वों को एक पुरुष कर दिया गया और वह एक पुरुष प्रजापति है जिसने प्रजाओं का सृजन किया। प्रजाओं को उत्पन्न करके वह स्वयं वहाँ पहुँच गया जहाँ सूर्य तपता है। उस स्थान पर प्रजापति को छोड़कर अन्य कोई यज्ञिय तत्व नहीं था। देवों ने उसे यज्ञ करने के लिए धर पकड़ा इसीलिए **पुरुष सूक्त** में कहा गया है कि –

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः"।[31]

देवों ने यज्ञ के द्वारा यज्ञ किया अर्थात् यज्ञिय प्रजापति के द्वारा प्रथम यज्ञ किया जो आदि धर्म था और इस यज्ञ को करते हुए देवता उस स्वर्ग पर पहुँच गये जहाँ पहले से ही साध्यगण विद्यमान हैं। **यज्ञानुष्ठान में यह मन्त्र पुनः पुनः उच्चरित कर स्मरण कराया जाता है। जिस तथ्य का स्मरण कराया जाता है उसका एक ही अभिप्राय है कि "प्रजापतिर्वे यज्ञः" अर्थात् प्रजापति यज्ञ स्वरूप है। इस प्रकार प्रजापति के आदि यज्ञरूपत्व पर भी प्रकाश पड़ता है जो सृष्टि का प्रथम यज्ञ था। वह प्रकृति यज्ञ था और उसी के अनुकरण ये भौतिक अनुष्ठान हैं। इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण में वर्णित सम्पूर्ण अनुष्ठान क्रियाओं की प्रतीकात्मकता को समझा जा सकता है। एक कुशल पाचक चावल के एक कण से ही सब कुछ परख लेता है। अतः विद्वान् पाठक उपर्युक्त विवरण से इस तथ्य को पूर्णतया समझ सकते हैं कि किस प्रकार यज्ञ प्रजापति रूप है और प्रजापति यज्ञ रूप इसीलिए शतपथकार पुरजोर कहते हैं – प्रजापतिर्मज्ञः अर्थात् यज्ञ प्रजापति की प्रतिमा है।**

संदर्भ ग्रन्थ :

1. ऋग्वेद : 10.90.16
2. शतपथ ब्राह्मण : 13.1.8.3
3. तैत्तिरीय ब्राह्मण : 3.3.7.3
4. कौषीतकि ब्राह्मण : 10.1.13.1
5. ऐतरेय ब्राह्मण : 2.17, 4.26
6. तैत्तिरीय ब्राह्मण : 3.2.3.1
7. गोपथ ब्राह्मण (उत्तर भाग) : 3.8, 4.12, 6.1
8. तैत्तिरीय ब्राह्मण : 3.7.1.2
9. निरूक्त : 3.4
10. शतपथ ब्राह्मण : 3.9.4.23
11. शतपथ ब्राह्मण : 4.3.4.3
12. शतपथ ब्राह्मण : 1.1.1.13, 3.2.2.4, 4.1.115–16, 5.1.2.11
13. शतपथ ब्राह्मण : 4.2.4.16, 4.5.5.1
14. शतपथ ब्राह्मण : 5.1.4.10
15. शतपथ ब्राह्मण : 1.7.4.4
16. शपतथ ब्राह्मण : 1.2.5.12, 2.2.2.3–5, 11.1.1.1 आदि
17. शतपथ ब्राह्मण का सांस्कृतिक अध्ययन : डॉ. उर्मिला देवी शर्मा
18. शतपथ ब्राह्मण : 4.3.4.3
19. शतपथ ब्राह्मण : 1.7.3.5
20. शतपथ ब्राह्मण : 3.5.3.1, 3.4.4.1
21. शतपथ ब्राह्मण : 11.2.7.32
22. शतपथ ब्राह्मण : 10.5.2.1
23. शतपथ ब्राह्मण : 1.4.1.35
24. शतपथ ब्राह्मण : 1.7.2.22
25. शतपथ ब्राह्मण : 1.6.3.36
26. शतपथ ब्राह्मण : 1.3.5.10
27. शतपथ ब्राह्मण : 2.2.1.4
28. शतपथ ब्राह्मण : 10.4.2.17–18

29. शतपथ ब्राह्मण : 10.2.1.1–11

30. शतपथ ब्राह्मण : 10.2.2.1

31. ऋग्वेद : 10.90.16